विशेष आवश्यकता वाले बालकों के लिये समावेशी शिक्षा का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य
(HISTORICAL PERSPECTIVE OF INCLUSIVE EDUCATION CHILDREN WITH DIVERSE NEEDS)

प्रतिभाशाली बालक तो सदैव होते हैं लेकिन उन बालकों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये समावेशी शिक्षा नहीं दी जाती। 19वीं शताब्दी से अमेरिका तथा यूरोप में समावेशी शिक्षा के इतिहास की जड़ें मूल रूप से पाई जाती हैं। प्राचीन सभ्यता पर यदि हम दृष्टि डालते हैं, तो पाते हैं कि या तो शारीरिक रूप से बाधित बालकों की हत्या कर दी जाती थी या समाज उन्हें कलंक की दृष्टि से देखता था या उन्हें नगण्य समझा जाता था। 19वीं शताब्दी से पहले अपंग बालकों को स्वीकार न करने, दयालुता से देखभाल करने तथा शिक्षा के प्रति पृथक्कीकरण (Isolation) के संकेत मिलते हैं।

शिक्षा प्रणाली में समावेशी अथवा समावेशी शिक्षा का प्रवेश (Inclusive Education in Education System)

बालकों को सुयोग्य नागरिक बनाने के सम्बन्ध में शिक्षकों को बालकों के सम्बन्ध में उनकी प्रवृति, रुचि और इच्छाओं का ज्ञान प्राप्त हुआ। इसी ज्ञान ने वस्तुतः मनोवैज्ञानिक तथ्यों की खोज की प्रेरणा दी। फलतः पूर्व प्रचलित शिक्षा प्रणाली पूर्णतया परिवर्तित हो गई। पहले पूर्व निश्चित शिक्षा के स्तर के अनुसार बालकों को शिक्षित किया जाता था और अब बालकों के विकास स्तर के अनुकूल उनकी शिक्षा व्यवस्था की जाती है। अगले पृष्ठों में हम इस परिवर्तन की गति अर्थात् मनोवैज्ञानिक शिक्षा के विकास का अध्ययन करेंगे। शिक्षा के मनोविज्ञान का आविर्भाव प्रायः 17वीं शताब्दी से हुआ है। अतएव 17वीं शताब्दी से वर्तमान 20वीं शताब्दी तक के काल में इस दिशा में हुई प्रगति का अध्ययन करने के लिए प्रत्येक शताब्दी का विवरण अलग-अलग प्रस्तुत करना ठीक होगा।

सत्रहवीं शताब्दी (17th century)

सर्वप्रथम शिक्षा सुधारक कमेनियस (Johann Amos Comenius) के परिश्रम से उनकी पुस्तक 'स्कूल ऑफ इन्फैन्सी (School of Infancy) के प्रकाशन के साथ सन् 1628 ई. में शिक्षा प्रणाली में वैज्ञानिक पद्धति का उद्भव हुआ। परन्तु इस पुस्तक से प्रायः धनाढ्य वर्ग ही, जो अपने बालकों को समुचित विकास हेतु सचेष्ट था, लाभान्वित हो सका। कोमल तथा चपलमति बालकों की ग्राह्य शक्ति को दृष्टिगत करते हुए कमेनियस ने 1657 ई. में 'आरबिस पिक्ट्स (Orbis Pictus; World in Picture) नामक दूसरी पुस्तक का सृजन किया। इस पुस्तक की पठन सामग्री चित्रों में अंकित थी, जिसका मूल उद्देश्य बच्चों को सर्वप्रथम स्थूल तथ्यों (objective facts) से परिचित कराने के पश्चात् उनके सूक्ष्म नामों (Abstract terms) का ज्ञान प्रदान करना था। इस प्रकार कमेनियस ने शिक्षा प्रणाली का एक नया पथ प्रशस्त किया। बच्चों की व्यक्तिगत क्षमता और प्रवृत्ति पर उनके स्वच्छन्द विकास की प्रणाली निर्धारित की गई।

अठारहवीं शताब्दी (18th century)

18वीं शताब्दी में बालकों के अध्ययन की प्रायः दो प्रणालियाँ थीं। प्रथम, बाल-शिक्षा के अध्ययन की दार्शनिक शाखा और दूसरी धारा के अन्तर्गत बालकों का अध्ययन नित्य प्रति के अवलोकन द्वारा किया जाता था। इन प्रणालियों को क्रमशः बाल अध्ययन की परोक्ष एवं प्रत्यक्ष विधि की संज्ञा दी जा सकती है। जॉन लॉक (John Locke), रूसो (Russeau) तथा हर्बर्ट (Herbart) आदि शिक्षाविदों के विचारों ने बालकों के अध्ययन की प्राकृतिक विधि का प्रणयन किया और बालकों के सहज विकास को

पर्याप्त स्वतन्त्रता प्रदान की। फ्रोबेल (Froebel) को जिन्हें किंडरगार्टन (Kindergarten) शिक्षा का जन्मदाता कहा जाता है, इस सम्बन्ध में विशेष ख्याति प्राप्त है।

अब तक बालकों का अध्ययन व्यक्तिगत अथवा समूह के रूप में होता था, परन्तु 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जीवनी की इति से बालको का अध्ययन प्रारम्भ हुआ। 1774 ई. में पेस्तालॉजी ने अपने 3½ वर्षीय पुत्र के अवलोकन पद्धति द्वारा किए गए अध्ययन द्वारा बाल-अध्ययन को वैज्ञानिक पद्धति का श्रीगणेश किया। इस प्रकार 18वीं शताब्दी में बाल-अध्ययन की वैज्ञानिक पद्धति का प्रारम्भ हुआ।

19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में बालकों के अध्ययन में उनकी गति में उतनी तीव्रता नहीं रही जितनी इसके उत्तरार्द्ध में।

19th century

बाल-विकास के अध्ययन में प्रगति
(PROGRESS IN THE STUDY OF CHILD DEVELOPMENT)

19वीं शताब्दी में बाल-विकास के अध्ययन में आशातीत प्रगति हुई। शिशुओं का व्यक्तिगत रूप में प्राणिशास्त्रीय अध्ययन किया गया। विभिन्न विचारकों द्वारा डारविन के विचारों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया कि प्राणिशास्त्रीय रचना के दृष्टिकोण से शिशु विकास शृंखला का वह स्तर है, जिसे जानवर और मानव के बीच की खोई हुई कड़ी कहा जा सकता है। इस-शताब्दी में बाल-विकास का अध्ययन विभिन्न प्रकार से भिन्न-भिन्न रूपों में किया गया।

बाल-विकास सम्बन्धी तथ्यों एवं आकँड़ों के संकलन हेतु विभिन्न पत्रों एवं पत्रिकाओं का सम्पादन भी इस शताब्दी से प्रारम्भ हुआ। अमेरिका, जर्मनी, इंग्लैण्ड, फ्रांस तथा पश्चिमी देशों में 19वीं शताब्दी में बाल-विकास के अध्ययन को अधिक महत्त्व दिया गया और पर्याप्त सफलता भी प्राप्त हुई।

बाल-विकास के इस वैज्ञानिक अध्ययन को विश्वव्यापी बनाने के ध्येय में अमेरिका, जर्मनी, फ्रांस, इंग्लैण्ड तथा पोलैण्ड आदि प्रायः सभी पश्चिमी देशों में अन्तर्राष्ट्रीय शैक्षिक समितियों की स्थापना हुई। बाल-विकास के अध्ययन समिति के श्रीगणेश का श्रेय स्टैनली हॉल को है। 1894 ई. में शिकागो (Chicago) में होने वाली 'अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा समिति' (International Conference on Education) के अवसर पर स्टैनली हॉल ने इस प्रकार के प्रथम अमेरिकी संगठन की व्यवस्था की। फिर उनके चरण-चिन्हों पर चलकर विभिन्न देशों ने भिन्न-भिन्न समितियों की स्थापना की। 1906 ई में बर्लिन (Berlin) में सर्वप्रथम इस प्रकार की 'अन्तर्राष्ट्रीय कांग्रेस (International Congress for child study) का आयोजन हुआ।

बाल-विकास अध्ययन के फलस्वरूप उन शिशुओं का भी पता चला जो मानसिक दुर्बलता अथवा अक्षमता के कारण विद्यालय, परिवार और समाज की एक समस्या का रूप धारण कर चुके थे। सर्वप्रथम 1891 ई. में ऐसे बच्चों के उपचार हेतु मनोवैज्ञानिक केन्द्र की स्थापना हुई। दूसरा मनोवैज्ञानिक उपचार गृह (Psychological clinic) 1896 ई. में पेन्सिलवेनिया (Pensylvania) नामक विश्वविद्यालय में स्थापित किया गया। 20वीं शताब्दी में इस दिशा में विशेष प्रगति हुई।

शिशु-अध्ययन के विकास के फलस्वरूप जाने अथवा अनजाने रूप में उन पर होने वाले अत्याचारों की खोज की गई। इसके निवारणार्थ 1868 ई. में ठोस कदम उठाए गए। 1857 ई. में 'शिशु-निर्दयता अवरोध समिति' (Society for the prevention of cruelty to children) की स्थापना हुई। 1887 ई. में न्यूयार्क (New York) में शिशु सेटिलमेंट हाउस (settlement house) की नींव पड़ी। 1899 ई. में इस विषय से सम्बन्धित अभिभावकों के लिए फ्लोरेंस एच. विण्टरबर्न (Florence H. Winterburn) द्वारा 'फ्राम दि चाइल्ड्स स्टैण्ड प्वाइंट' (From the child's stand point) नामक पुस्तक प्रकाशित

कराई गई। इसके अतिरिक्त 1898 एवं 1900 ई. के अन्तर्गत डेनवर (Denver), बोस्टन (Boston), शिकागो (Chicago) तथा न्यूयॉर्क (New York) नामक शहरों में किशोर अपराध न्यायालयों की स्थापना हुई।

बीसवीं शताब्दी (20th century)

शिशु अध्ययन के विकास को देखते हुए वर्तमान शताब्दी को 'शिशु शताब्दी' कहना अत्युक्ति न होगी। पूर्व प्रचलित जीवनी प्रणाली के स्थान पर शिशुओं के व्यवहारों को अधिक महत्व प्रदान किया गया। अध्ययन की गति को नवीनता प्रदान करने वाले तथ्य इस प्रकार हैं–

(A) बालकों की विभिन्न क्षमताओं का विशेष अध्ययन

20वीं शताब्दी के पूर्व शिशु-अध्ययन उनकी जीवनी पर आधारित था। अब बच्चों के ज्ञानार्जन, उनके शारीरिक एवं भावात्मक विकास, भाषा, धार्मिक प्रवृत्ति, चारित्रिक बल, नैतिकता, खेल-कूद, भाव-प्रदर्शन की जिज्ञासा और विधि तथा उनकी सामाजिकता को अध्ययन का विषय बनाया गया। इस प्रकार उपर्युक्त तथ्यों को लेकर विशेष प्रकार से की जाने वाली अध्ययन की रीति अत्यधिक उपयोगी सिद्ध हुई।

(B) अपसमायोजित बच्चों का अध्ययन

अपसमायोजित बालकों पर 19वीं शताब्दी में ही ध्यान दिया गया था। इस शताब्दी में इन्हें तीन श्रेणियों में विभाजित करके इनके विशेष अध्ययन की व्यवस्था की गई। बुद्धि-परीक्षा के आधार पर मानसिक दुर्बलता वाले बच्चों के निर्वाचन से उनका एक अलग समूह बनाकर अनुकूल स्तर की शिक्षा प्रदान करने की योजना कार्यान्वित की गई। दूसरी श्रेणी में उन अपसमायोजित बालकों को रखा गया जिनके अपसमायोजन का कारण-घर, स्कूल अथवा समाज का प्रतिकूल वातावरण था। ऐसे बच्चों के मनोवैज्ञानिक रीति से उपचार की व्यवस्था की गई। तीसरी श्रेणी में वे बच्चे थे जो अपनी तीव्र बुद्धि के कारण सामान्य बच्चों से भिन्न हो गए थे। उनके समुचित विकास हेतु बौद्धिक स्तर के अनुकूल आवश्यक पाठ्यक्रम और शिक्षा की व्यवस्था की गई।

(C) व्यवहारों के आधार पर शिशु अध्ययन

19वीं शताब्दी में प्रचलित बाल-विकास के अध्ययन की जीवनी पद्धति द्वारा प्रत्येक बालक का अध्ययन व्यक्तिगत रूप में हो पाता था। उसी आधार पर बाल समूह की गतिविधियों का अनुमान कर लिया जाता था अतएव यह पद्धति पूर्णतया दोषमुक्त नहीं कही जा सकती। वर्तमान शताब्दी में अध्ययन का आधार बालक का व्यक्तिगत और सामूहिक व्यवहार मानकर पद्धति को अत्यधिक उपयुक्तता और वैज्ञानिकता प्रदान की गई। अनुमान का स्थान प्रत्यक्ष अवलोकन और अनुभव ने ले लिया।

(D) बुद्धि परीक्षण द्वारा अध्ययन

20वीं शताब्दी की प्रथम दशाब्दी तक बुद्धि-परीक्षण में पर्याप्त प्रगति हो चुकी थी। इस प्रणाली में प्रवृत्ति अथवा रुझान परीक्षण को भी समुचित स्थान प्राप्त था। परीक्षण में प्रत्येक बालक के जीवन स्तर, लिंग, जाति और सामजिक मूल्यों को यथेष्ट महत्व प्रदान होने के कारण विभिन्न बालकों के विकास के अन्तर और उसके कारणों का पता सुगमता से चल जाता है। अतएव विकास स्तर के अनुसार उन्हें विभिन्न श्रेणियों में विभक्त करके तदनुरूप उनके पाठ्यक्रमों का चयन किया गया।